संपादकीय

'जन विकल्प' का चौथा अंक आपके हाथ में है। हमने पहले सूचना दी थी कि प्रस्तुत अंक बदलते संबन्ध और साहित्य पर केन्द्रित होगा। लेकिन सामग्रियों के अभाव के कारण उसमें हमें परिवर्तन करना पडा। फिर भी थोडी सामग्रियाँ उक्त विषय को लेकर हैं, बाकी अन्य मुद्दों से संबन्धित भी। के.के. वेलायुधन, शान्ती नायर, अंजली जोसफ आदि के आलेख बदलते संबन्ध को लेकर लिखे गए हैं। अन्य आलेखों में दलित, नारी अस्मिता आदि मुद्दे आते हैं तथा प्रेमशंकर रघुवंशी की कविताओं पर एक विशेष आलेख भी है।

समय संबन्ध को बदल देता है या शिथिल करता है, इसको लेकर मतभेद होगा ही। आदर्श से सुविधा तक की समाज की यात्रा एक ओर है, दूसरी ओर विभिन्न परिस्थितियाँ हैं। संबन्ध, पहले पारिवारिक सन्दर्भ में और सामाजिक सन्दर्भ में बडा मूल्य था। संयुक्त परिवार तथा बाद के परिवार का भी वह आधार ही रहा। आज हर कहीं परिवर्तन ही परिवर्तन है, जैसा कि पंत ने 'परिवर्तन' में कहा था कि परिवर्तन को छोडकर बाकी सबका परिवर्तन होगा। याने समाज बदलता रहता है भीतरी व बाहरी कारणों से; उसके अनुसार संबन्ध में भी बदलाव होता रहता है। परिवर्तन के कारणों में सबसे सशक्त अर्थ एवं सुविधा है। इसका मतलब अन्य कोई कारण नहीं है, ऐसा नहीं है।

संबन्धों को शिथिल करने में अर्थ की भूमिका ध्यान देने योग्य है। पूंजीवादी समाज में धन ही सबसे मूल्यवान है। वहाँ मनुष्य और उसके संबन्धों का आधार भी धन ही है। ऐसे समाज में संवेदना, रिश्ता सब कुछ गौण हो जाता है। दूसरी ओर वर्गबद्ध समाज में आर्थिक विपन्नता भी संबन्धों की ऊष्मा को कम कर देती है। भूख मनुष्य की बुनियादी समस्या है जिसके सम्मुख अन्य सारी बातें गौण व अप्रासंगिक होती हैं। 'कफन' कहानी के ज़रिए प्रेमचन्द ने इसे दिखाया भी है। यहाँ पति-पत्नी का संबन्ध तत्काल के लिए ही सही, अप्रासंगिक होता है। प्रेम को जीवन रस माना जाता है, वह भी समय का धक्का खाए बिना नहीं बच पाया है। वाल्मीक पर बैठे क्रौंच पक्षी को दिखाकर अज्ञेय ने कहा कि वह दीमकों की टोह में बैठता है, न कि अपनी संगिनी के स्मरण में। उपनिवेशी आधुनिकता ने हमारे मूल्यबोध को कैसे बदल दिया है, उसे 'चीफ की दावत', 'वापसी' जैसी कहानियाँ स्पष्ट करती हैं। धन और सुविधा के पीछे पडी आधुनिक पीढी के आगे संबन्ध का आधार कैसे बदल रहा है, उस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। आज सभी सुविधा का रास्ता अपना ले रहे हैं और उस रास्ते से अब तक हम श्रेष्ठ एवं पवित्र समझे सभी संबन्ध, सारे मूल्य गायब होने लगे हैं। अपने सीमित जीवन को सुविधापूर्ण बनाने के प्रयास में हम सबकी उपेक्षा करते हैं, अपने माँ-बाप को, बच्चों को, सगे-संबन्धियों को, पडोसियों को, हमारे पर्व-त्योहारों के अर्थ एवं महत्व को ही नहीं, विरासत तक को भुला देते हैं। विस्थापितों का सामाजिक संबन्ध इससे भिन्न तो नहीं है।

विस्थापन का कारण चाहे जाति-धर्म या विकास-नीति कोई भी हो, नए इलाके में उसका स्वागत कोई करता नहीं, साथ ही वह अपने को नई परिस्थितियों में अनफिट महसूस भी करता है। आज के सहजीवन, समलैंगिकता जैसी बातें भी संबन्ध की परिकल्पना को चुनौती देती हैं। संवेदना के इस संक्रमण को समकालीन साहित्य गंभीरता के साथ ले रहा है।

पाठकों की प्रतिक्रियाओं तथा टिप्पणियों का स्वागत खुले मन से करते हैं।

पी. रवि

अनुक्रम

संपादकीय		
समकालीन कविता का प्रतिरोध (संदर्भ : बदलते संबन्ध और साहित्य)	प्रोफ. के.के. वेलायुधन	7
बंजर समय को जोतती कविताएँ	डॉ. शान्ती नायर	15
बाज़ारीकरण के तकाज़े में बदलते मानवीय संबन्ध एवं समकालीन हिन्दी कहानी	अंजली जोसफ	23
जनकवि नागार्जुन : बदलते सामाजिक संबंधों के प्रखर वक्ता	डॉ. विजय कुमार 'संदेश'	30
कविता की शानदार पदयात्रा	डॉ. के.जी. प्रभाकरन	35
दलित स्त्री आंदोलन तथा साहित्य : अस्मितावाद से आगे	डॉ. बजरंग बिहारी तिवारी	49
दलित साहित्य का सौन्दर्य-मूल्य : अनुभव और अस्मिता बोध	डॉ. मनोज पाण्डेय	66
दलित आन्दोलन के उन्नायक अम्बेडकर	डॉ. पी. गीता	76
पारिस्थितिक स्त्रीवाद और समकालीन हिन्दी कविता	डॉ. रम्या पी.आर.	81
नब्बे के बाद की हिंदी कविता में गाँव	रम्या राज आर.	89
साम्प्रदायिक बर्बरता के बावलेपन को दर्शाता 'उन्माद'	प्रिया के.	94
अस्तित्वबोध और मुक्ति की पहचान : प्रभा खेतान के उपन्यासों में	सुनीता टी.के.	99